International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 145-147

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 145-147
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-05-2018
Accepted: 19-06-2018

डॉ.सावित्री शर्मा
प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, भिलाई, छत्तीसगढ़, भारत

Correspondence
डॉ.सावित्री शर्मा
प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती महाविद्यालय, भिलाई, छत्तीसगढ़, भारत

वेदों में चरित्रनिर्माण के पथप्रदर्शक सूक्तियों की विवेचना

डॉ. सावित्री शर्मा

प्रस्तावना

वेद भारतीय संस्कृति का आदि उद्‌गम है। यह परमपिता परमात्मा की अमर वाणी है। विश्व के सभी तत्वदेवताओं ने यह स्वीकार किया है कि वेद न केवल प्राचीनतम गंथ है, अपितु समस्त विश्वसाहित्य की मुकुटमणि है। वेदों के अक्षय भंडार के एक–एक अक्षर से अमृत रस की धारा बहती है। प्रत्येक वेदमंत्र में आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभैतिक शक्ति विज्ञान, तत्वज्ञान और समाधान भरा हुआ है।

जिन योग्य विद्वानों ने इन प्राचीन धार्मिक ग्रंथों का जीवन भर अध्ययन किया है, उनका वैदिक शक्तियों के भाव के संबंध में भिन्न–भिन्न मत है। फ्लीडरर का मत है कि ऋग्वेद की प्रार्थना का प्रारंभिक, बच्चों की निश्चल प्रार्थना के रूप में वर्णन किया जाना चाहिए। विद्वान राममोहन राय की सम्मति में वैदिक देवता परमब्रह्मा के भिन्न–भिन्न गुणों के आलंकारिक प्रतिनिधि के रूप में है।

आत्म उन्नति के लिए उत्कृष्ट चरित्र पहली आवश्यकता है। क्योंकि यह मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ निधि है। जो इसमें सफल होता है वह सुगमता से जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इसकी रक्षा अपने जीवनरक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः।
मधु घौरस्तु नः पिता।। (ऋग्वेद 1/90/7)

अर्थात् संसार में ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे सभी को सुख–शांति और प्रसन्नता मिले। स्पष्ट है कि हमें आत्मा की आवाज को सुनकर परमात्मा द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करते हुए मानव जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने
पश्यन्तो अन्धं दुरिता दरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा
दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः।। (ऋग्वेद 1/147/3)

अर्थात् परोपकार और परमार्थ के कार्यो में निंदा, लांछन, उपहास आदि का भय नहीं करना चाहिए। ऐसे मनुष्यों की रक्षा स्वयं परमात्मा करता है। अतः निश्चित होकर लोककल्याण में लगे रहना चाहिए। इसके निहित यह संदेश है कि ''कोई क्या कहेगा'' इसकी चिंता किए बिना कर्त्तव्य पालन करे।

येनदेवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मों ब्रह्मा वो गृहे संज्ञानं पुरूषेभ्यः।। (अर्थवेद 3/30/4)

अर्थात् विद्वान कभी लड़ते–झगड़ते या ईर्ष्या द्वेष नेहीं करते। मनुष्यों के विचार समान हो इसलिए सद्‌साहित्य के स्वाध्याय की आवश्यकता है। इसमे यह संदेश दिया है कि अच्छे साहित्य को पढ़ने का क्रम नित्यकर्म की तरह अपनी दिनचर्या में सम्मिलित कर लेना चाहिए।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः,
सहस्त्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य
चक्रा भुवनानि विश्वा।। (अथर्व वेद 19/53/1)

अर्थात् जो समय आज निकल जाएगा वह फिर आने का नहीं। समय बड़ा बलशाली है, यह जानकर ज्ञानी लोग सदैव समय का सदुपयोग करते हैं।
अतः हमे 'काल करे सो आज कर, आज करै सो अब' की दृष्टि अपनानी चाहिए।
समय का सदुपयोग चरित्र का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।। (ऋग्वेद 5/51/15)

हे मानवो! सूर्य चंद्रमा जिस प्रकार नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं उसी प्रकार तुम्हे भी न्याय का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। इसमें यह संदेश निहित है कि
नियम पालन को अपना स्वभाव बना लेना चाहिए।

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रनधीरराव्णे।
त्वे अपि क्रतुर्मम।।

हे मनुष्यो! तुम कभी किसी को कटु वचन मत बोलना, किसी की निंदा न करना, कृतघ्न न बनना। दुखी लोगों की सहायता करते रहना। तुम्हारा प्रत्येक शुभ कर्म परमेश्वर को समर्पित हो। मधुर भाषण कामधेनु के समान है। यहाँ यह सीख दी गई है कि मधुर भाषण मनुष्य के चरित्र का उत्कृष्ट गुण है।

न स सखा यो न ददाति सख्ये
सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति
पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्।। (ऋग्वेद 10/17/4)

अर्थात् जो कृतज्ञता का बदला नहीं चुकाते, अपनी सेवा देने में कृपणता दिखाते हैं, उनका संसार में कोई भी हितैषी नहीं होता। इसलिए मनुष्य को सदैव उदार स्वभाव का होना चाहिए।
अतः हमें अपने आदर्श जीवन मूल्यों को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करना चाहिए। परमपिता परमेश्वर के प्रति तो आभार व्यक्त करना हमारा परम धर्म है ही।

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे
द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे
सम्पश्यन्पङ्क्तरूपतिष्ठमानः।। (ऋग्वेद 10/117/8)

इस संसार में सभी एक समान नहीं हैं। सब श्रेणीबद्ध हैं, एक से बढ़कर एक धनी, विद्वान आदि। अपनी तुलना अधिक क्षमतावान व्यक्ति से करना दुखदायी होता है इसीलिए जो कुछ भी हमें मिला है उसे ही परमात्मा का प्रसाद मानकर अपना कर्तव्य पालन करते रहना चाहिए। चरित्रवान व्यक्ति की यही पहचान है।

सत्यं चमे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे
विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च में
जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे
सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् (यजुर्वेद 18/5)

मैं ऐसे कर्म करूं जिससे मेरा सत्य, श्रद्धा, मिश्रता, धन, व्यापकता, क्रीड़ा, विनोद, वचन और शुभ कर्म समुन्नत हों। अर्थात् चरित्रवान व्यक्ति इसी प्रकार के आदर्श जीवन को अपनाकर यशस्वी बनते हैं।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः
रसेन तुप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभय
मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।। (अथर्व वेद 10/8/44)

परमात्मा निःस्वार्थ भाव से धैर्यपूर्वक प्राणियों की सेवा करता है। जो परमात्मा के इन गुणों का अनुसर करता है वह निर्भय होकर सदैव आनंद पाता है।
अतः परोपकार चारित्रिक दिव्यता का प्रतीक है।

वैश्वदेवीं वर्चस आरभध्वं
शुद्ध भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि
शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम्। (अर्थवेद 12/2/28)

हमारे विचार सदैव शुद्ध व पवित्र रहें। हम दूसरों को भी कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग की ओर ले जावें ताकि सभी मिलकर पूर्ण आयुष्य प्राप्त करें।
अतः अपने चरित्र में इस उत्कृष्टता का समावेश करना हमारा परम धर्म है।

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैभूतेन
गुप्तो भव्येन चाहम।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत
मृत्युरन्तर्दधेऽह सलिलेन वाचः।। (अर्थवेद 17/1/29)

अर्थात् सत्यकर्म और धर्माचरण से ही मनुष्य जीवन सुरक्षित रहेगा इसलिए हम निष्पाप और यशस्वी बनें और सदैव उच्च ज्ञान प्राप्त करते रहें।
धर्मानुसार आचरण ही उत्तम चरित्र का आधार है।

गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत।। (ऋग्वेद 3/45/3)

अर्थात् सुख उन्हें मिलता है जो समुद्र के सामन अचल गंभीर बुद्धि वाले होते हैं, जिनमें पृथ्वीं के समान क्षमा और पलान की सामर्थ्य होती है। जो गौ के समान दानी और नदी के जैसे निरंतर क्रियाशील होते हैं।
अतः हमें देवताओं के चरित्र से इन अमूल्य आदर्शों को अपनाने का प्रयास करना चाहिए।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।। (ऋग्वेद 10/151/1)

अर्थात् श्रद्धापूर्वक किए गए लोकोपकारी कर्म ही ध्येय सिद्धि की सामर्थ्य रखते हैं। अतः मनुष्य को श्रद्धा से भरपूर होना चाहिए। हमें श्रद्धा को अपने चरित्र का आधार बनाना चाहिए।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च
नमः पूर्वजाय चापरजाय च।
नमो मध्यमाय चापगल्भाय च
नमो जघन्याय च बुध्न्याय च।। (यजुर्वेद 16/32)

अर्थात् ऊंच–नीच, छोटे–बड़े सभी परस्पर मिलते समय 'नमस्ते' कहकर एक दूसरे का आदर–अभिवादन किया करें। इससे पारस्परिक प्रसन्नता का और मेलजोल का व्यवहार बना रहता है। अपने पूज्यों का आदर–मान करने वाले के आयु, विद्या, यश तथा बल–चारों पदार्थ निरंतर बढ़ते हैं।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।। (यजुर्वेद 19/30)

अर्थात् व्रत धारण करने से मनुष्य को श्रेष्ठ अधिकार व योग्यता की प्राप्ति होती है इससे मनुष्यों का आदर सत्कार बढ़ जाता है।

सम्मान प्राप्त होने से सत्य कर्मों के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है।
अतः सत्याचरण ही हमारे चरित्र की प्राण शक्ति है।

घमैंतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि।। (यजुर्वेद 38/21)

अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा सर्वत्र व्याप्त होकर सबकी रक्षा व पुष्टि करता है, हे मनुष्यो! उसी प्रकार तुम भी श्रेष्ठता प्राप्त कर संपूर्ण जीवों की रक्षा और पुष्टि करो।
यह दैवी भावना हमारे चरित्र में आ जाए तो हम प्रगति के उच्चतम सोपान पर पहुंच सकते हैं।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। (अथर्व वेद 6/64/1)

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह ज्ञान प्राप्त कर परस्पर मिलजुल कर रहे। सभी उत्तम संस्कारवान हों। जिस तरह हमारे पुरखे अपने कर्तव्यों का पालन करते रहे हैं उसी प्रकार हम भी सदैव अपना कर्तव्य पूरा करते रहें।
अपने पूर्वजों के ऐसे उत्कृष्ट आदर्शों का पालन करके ही हम चरित्रवान बन सकते हैं।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वचा वदोमि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।। (अर्थवेद 1/34/3)

अर्थात् जिनके व्यवहार, क्रिया और संभाषण में मधुरता होती है उन्हें सभी प्यार करते हैं। संसार में शुभ कर्म व उपकार वही करते हैं जिनका स्वभाव मधुर होता है।
सच्ची मधुरता जिह्वा की ही नहीं आचरण की भी होती है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहं जहि।। (अर्थवेद 20/5/3)

अर्थात् हम शक्तिशाली बनें ताकि उन्नति के मार्ग पर जो भी विघ्न आएं उनसे लड़ सकें।
प्रतिकूलता से संघर्ष करने की शक्ति ही हमें ओजस्वी, तेजस्वी और वर्चस्वी बनाती है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।। (ऋग्वेद 1/22/19)

अर्थात् किसी धार्मिक ग्रंथ या वेद मंत्रों को तोते की भांति रटने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। हमें उन नियमों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।
सद्ज्ञान से अपने आचरण को निखारना ही चरित्र निर्माण है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत
त्वः शृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्। (ऋग्वेद 10/71/4)

अर्थात् जो सदुपदेश सुने तो किंतु अपने जीवन में धारण न करे वह अंधे, बहरे के ही समान है।
सदुपदेशों पर आचरण करना हमें अपने स्वभाव का एक अंग बना लेना चाहिए।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्।
सुम्नैरिद्व आ विवासे।। (ऋग्वेद 1/41/8)

अर्थात् जो लोग धर्मनिष्ठ सदाचारी पुरूषों की मित्रता करते हैं, उनकी रक्षा करते हैं और सद्व्यवहार, भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा उनका सम्मान करते हैं उन्हें सदैव सुख प्राप्त होता है। दुष्ट दुर्जनों के प्रभाव से सदैव दूर रहना चाहिए। वे विद्वान हैं जो धर्मात्माओं की मैत्री करते हैं।
हमें सदैव दृष्ट दुराचारी व्यक्तियों से बचना चाहिए और धर्मनिष्ठ, सज्जन, सदाचारी व्यक्तियों से मित्रता रखनी चाहिए।

अपाघमप किल्विषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्य सुव।। (यजुर्वेद 35/11)

अर्थात् जो मनुष्य अपना आचरण शुद्ध बनाते हैं और दूसरों को शुद्ध बनाते हैं, हमें उनका सामीप्य मिले ताकि मन की मलीनता, दुष्ट दुरितो का क्षय हो।
सद्गुणी व्यक्तियों का संपर्क चरित्र निर्माण में सहायक होता है।

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेलां मदेम शतहिमाः सुवीराः। (ऋग्वेद 6/10/7)

अर्थात् विद्वान पुरूषों का यह कर्तव्य है कि वे श्रेष्ठ कर्म करें और दूसरों से भी करावें। इससे दोषों की निवृत्ति और बल, बुद्धि, विद्या तथा आयु में वृद्धि होती है।
चरित्रवान विद्वानों का यही कर्तव्य है।

स नो बोधि पुरएता सुगेषूत
दुर्गेषु पथिकृद्विदानः।
ये आश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न
इन्द्राभि वक्षि वाजम्।। (ऋग्वेद 6/21/12)

अर्थात् जो सबका मंगल करता हो, स्वयं धर्म पथ पर चले ओर दूसरों को भी सन्मार्ग की ओर अग्रसर करे, वही विद्वान है। यह वृति सत्संग से जागृत होती है।
सत्संग चरित्र निर्माण में सहायक होता है।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्याँ श्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति।। (सामवेद 1303)

अर्थात् जिससे मनुष्य के विचार सत्कर्म की ओर प्रेरित होते हों, ऐसे साहित्य के स्वाध्याय से स्त्री पुरूषों को आनंद मिलता है। वे जीवन भर उत्तम पदार्थों का सेवन करते हुए अंत में मोक्ष लाभ प्राप्त करते हैं।
स्वाध्याय को जीवन का अभिन्न अंग और दैनिक कर्म बनाना चाहिए।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वेा गृहे संज्ञानं पुरूषेभ्यः।। (अर्थवेद 3/30/4)

अर्थात् विद्वान कभी लड़ते–झगड़ते या ईर्ष्या द्वेष नहीं करते। मनुष्यों के विचार समान हों इसलिए सद्साहित्य के स्वाध्याय की आवश्यकता है।
अच्छे साहित्य को पढ़ने का क्रम नित्यकर्म की तरह अपनी दिनचर्या में सम्मिलित कर लें।

संदर्भ सूची

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ कपिल देव द्विवेदी
2. पांतजल योगसूक्तम– डॉ. महाप्रभुलाल गोस्वामी संस्कृत संस्था वाराणसी
3. वेदो का दिव्य संदेश – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य पृष्ठ संख्या 212–216
4. सचित्र योग दर्शिका – डॉ. इंदुमोहन झा पृष्ट संख्या 23–24
Webography – www.ved.ac.in